



Date: 26-05-23

An ordinance, its constitutionality, and scrutiny

The Union of India is unlikely to succeed in wresting power of 'services' in Delhi if the Government of National Capital Territory of Delhi (Amendment) Ordinance, 2023 is challenged

Bishwajit Bhattacharyya is a senior advocate in the Supreme Court of India and a former Additional Solicitor General of India



On May 19, 2023, the President of India exercised legislative power under Article 123 of the Constitution, during the period Parliament was in recess, to promulgate “The Government of National Capital Territory of Delhi (Amendment) Ordinance, 2023” (Ordinance). The ordinance negates a Constitution Bench judgment of the Supreme Court of India, which was delivered on May 11, that brought “services” under the Government of National Capital Territory of Delhi (NCTD).

Key issues

There are two issues here that require analysis: first, the scope of the Court’s verdict. Second, the constitutionality of the ordinance.

While interpreting Article 239AA(3)(a), the Court ruled, inter alia, that these were the points: The Legislative Assembly of the NCTD has competence over entries in List II and List III, except for expressly excluded entries of List II (entries 1, 2, 18 are excluded); the executive power of NCTD is co-extensive with its legislative power, that is, it shall extend to all matters with respect to which it has power to legislate; the Union of India has executive power only over three entries in List II over which the NCTD does not have legislative competence (entries 1, 2, 18).

Thus, essentially, the Court interpreted that out of the 66 entries in List II (the State list), while the executive power of the Government of NCTD covers 63 entries, that of the Union of India is restricted to the remaining three:: public order (entry 1), police (entry 2) and land (entry 18).

Consequently, executive power over “services” (entry 41) can be exercised exclusively by the Government of the NCTD. This interpretation of the Court is consistent with the wordings in Article 239AA(3)(a). But, this interpretation was negated by the Union of India, acting through its Council of

Ministers under Article 74, by triggering extraordinary legislative power of the President under Article 123 in the promulgation of an ordinance on May 19.

What the ordinance did was to read/insert entry 41 of List II (State list) into Article 239AA(3)(a), thereby expanding the scope of excepted matter from three (1, 2, 18) to four (1, 2, 18, 41).

This could not have been done without amending Article 239AA(3)(a) of the Constitution. The power conferred on Parliament under Article 239AA(3)(b) is to make fresh laws — not to amend Article 239AA(3)(a) of the Constitution.

Alteration needs an amendment

Similarly, power conferred on Parliament under Article 239AA(7)(a) is to make laws for giving effect to or supplementing the provisions contained in various clauses of Article 239AA and for all matters incidental or consequential thereto. Such a power cannot be pressed into action to amend Article 239AA(3)(a) of the Constitution. Significantly, Article 239AA(7)(b) stipulates that Parliament's law making under Article 239AA(7)(a) shall not be deemed to be an amendment of the Constitution for the purposes of Article 368. No such clause has been stipulated in Article 239AA(3)(a). Therefore, altering the scope of Article 239AA(3)(a) requires constitutional amendment under Article 368; there is not an iota of doubt.

Consequently, the ordinance promulgated under Article 123 of the Constitution to expand the scope of excepted matters in Article 239AA(3)(a) is void ab initio and is liable to be struck down for bypassing constitutional amendment. It amounts to a colourable exercise of power. Article 123 is no substitute for Article 368 (amendment of the Constitution) in Part XX.

Besides, when a Constitution Bench (five judges) of the Supreme Court declares/interprets the law (Article 239AA(3)(a)), the same is binding on all courts and authorities in India in terms of Articles 141 and 144, respectively. Could Articles 141 and 144 have been negated by Article 123 without a constitutional amendment?

Articles 123, 141, 144 are in Part V (The Union) of the Constitution. None has a non-obstante clause. The aid and advice of the Union Council of Ministers to the President under Article 74 could not have overridden Article 144. The basis of the Court judgment is Article 239AA(3)(a). To alter this basis, a constitutional amendment is necessary.

A perspective

The Union of India's decision to prefer review (Article 137) and promulgate an ordinance (Article 123) simultaneously is ill-conceived; if the ordinance is challenged, the Union of India is unlikely to succeed through either route to wrest power of "services" in Delhi.

In the landmark seven-judge Bench verdict of the Supreme Court in the matter of Krishna Kumar Singh vs State of Bihar (2017) 2 SCC 136, the Court held that the satisfaction of the President under Article 123 is not immune from judicial scrutiny; powers under Article 123 is not a parallel source of law making or an independent legislative authority.

It was further held that the Court is empowered to look into the relevance of material placed before the President, but not its sufficiency or adequacy.

The ordinance is likely to be struck down since it expands excepted matters in Article 239AA(3)(a). Parliament alone can do this under Article 368.



दैनिक भास्कर

Date: 26-05-23

संसद में आज जो कुछ हो रहा है, पहले कभी नहीं हुआ था

डेरेक ओ ब्रायन, (लेखक सांसद और राज्यसभा में टीएमसी के नेता। इस लेख के सहायक शोधकर्ता अंकिता दिनकर और शेन बैपटिस्ट हैं)

वर्ष 2014 में मोदी सरकार बनने से लेकर अब तक कुल छह ऐसे अवसर आए हैं, जब संसद में वो घटनाएं हुईं, जो पहले कभी नहीं हुई थीं। इस कालखण्ड में संसद के अनेक नियमों और परंपराओं को बदला गया है।

संसद एक भवन भर नहीं है, वह परम्पराओं, मूल्यों, नियमों का प्रतिष्ठान भी है, हमारे लोकतंत्र का आधार है। 2014 से लेकर अब तक छह ऐसे अवसर आए हैं, जब संसद में वो घटनाएं हुईं, जो इससे पहले कभी नहीं हुई थीं।

1. जब लोकसभा या राज्यसभा में कोई विधेयक प्रस्तुत किया जाता है तो हर सदस्य को डिवीजन द्वारा मतदान का अधिकार होता है। अगर एक भी सांसद कहता है- डिवीजन, तो पीठासीन अधिकारी का दायित्व है कि इस पर मतदान करवाए। यह ध्वनिमत से भिन्न होता है और इसके लिए इलेक्ट्रॉनिक रीति या पर्चियों का उपयोग किया जा सकता है। 2020 में तीन कृषि कानूनों को पारित करते समय राज्यसभा में ध्वनिमत कराया गया था। अनेक सदस्यों ने अपने अधिकार का इस्तेमाल करते हुए डिवीजन की मांग की, जिसे नहीं कराया गया। पीठासीन अधिकारी (उस समय तत्कालीन उपराष्ट्रपति वेकेंया नायडू उपस्थित नहीं थे) ने नियमों को दरकिनार कर दिया। यह इकलौती घटना नहीं। संसद सदस्यों को नियमित ही वोट बाय डिवीजन के अधिकार से वंचित किया जा रहा है। 27 जुलाई 2021 को माकपा के ऐलामराम करीम, 28 जुलाई 2021 को द्रमुक के तिरुचि शिवा और 3 अगस्त 2021 को अनेक सदस्यों ने डिवीजन की मांग की थी, जिसे अनसुना कर दिया गया।

2. 2016 में एक सज्जन को राज्यसभा सदस्य मनोनीत किया गया। वे उन 12 सदस्यों में से थे, जिन्हें राष्ट्रपति द्वारा नामित किया जाता है। अपने छह वर्षीय कार्यकाल के पांचवें वर्ष में उन्हें 2021 के पश्चिम बंगाल चुनावों के लिए भाजपा उम्मीदवार घोषित कर दिया गया। उन्होंने राज्यसभा सदस्यता छोड़ दी। पर चुनाव हारने के बाद तीन महीने के भीतर ही उन्हें पुनः राज्यसभा में मनोनीत कर दिया गया। यह पहली बार था, जब किसी व्यक्ति का एक ही कार्यकाल में दो बार मनोनयन किया गया हो और उन्होंने इस बीच चुनाव भी लड़ लिया हो!

3. जब बजट सत्र दूसरी अवधि के लिए पुनः प्रारम्भ होता है तो लोकसभा द्वारा पांच मंत्रालयों के लिए डिमांड फॉर ग्रांट्स पर चर्चा की जाती है। इन पांच के लिए बजट पर विस्तार से चर्चा की जाती है, जबकि शेष मंत्रालयों पर एक साथ मतदान किया जाता है। लेकिन इस साल बिना किसी चर्चा के इन पांचों मंत्रालयों का बजट पारित कर दिया गया। यह 2004-05 और 2013-14 में भी हुआ था, पर अंतर यह है कि 2004-05 में सरकार के विरुद्ध कोई अविश्वास प्रस्ताव नहीं पारित किया गया था। वहीं 2013-14 में बजट को बहस के बिना ही पारित कराने का निर्णय लोकसभा की बिजनेस एडवायजरी कमेटी ने विधानसभा चुनावों के मद्देनजर लिया था। इस बार ऐसा जिस कारण से किया गया, वह अभूतपूर्व है। राज्यसभा में विपक्ष नहीं सत्ता पक्ष की ओर से नारेबाजी की जा रही थी, जिससे पूरा बजट सत्र बेकार चला गया।

4. आम्बेडकर ने सभापति के त्यागपत्र को राष्ट्रपति को सौंपे जाने के प्रस्ताव का विरोध करते हुए उपसभापति की भूमिका को रेखांकित किया था। यह उपसभापति की जिम्मेदारी थी कि स्पीकर के पद को कार्यपालिका से स्वतंत्र बनाए रखें। संविधान का अनुच्छेद 93 कहता है कि सरकार के गठन के उपरांत लोकसभा को तुरंत एक स्पीकर और एक डिप्टी स्पीकर का चुनाव कर लेना चाहिए। लेकिन इस बार चार साल हो गए हैं और अभी तक कोई डिप्टी स्पीकर नियुक्त नहीं किया गया है।

5. बजट सत्र के दौरान वित्त विधेयक पारित किया जाता है। इस पर लोकसभा में वोटिंग होती है और इसे किसी कमेटी को परीक्षण हेतु नहीं भेजा जाता। राज्यसभा इस पर वोटिंग या संशोधन नहीं कर सकती। लेकिन सरकार वित्त विधेयक में गैर-वित्तीय मामलों का भी समावेश कर रही है। इसका फायदा उठाकर संसदीय निरीक्षण बिना ही कानूनों को पास किया जा रहा है। 2016 के वित्त विधेयक में रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया एक्ट 1934 में संशोधन का प्रावधान था। 2017 के वित्त विधेयक में मौजूदा ट्रिब्यूनलों में संरचनागत बदलाव सम्बंधी प्रावधान थे और उसके जरिए अनेक कानूनों में वैसे संशोधन किए गए, जिससे इलेक्टोरल बॉन्ड स्कीम लागू हो सकी। 2018 के वित्त विधेयक में तो आधे ऐसे प्रावधान थे, जिनका कराराधान से कोई सम्बंध नहीं था।

6. 2017 में रेल बजट का आम बजट में विलय कर दिया गया। पृथक रेल बजट अतीत की बात हो चुका है। लेकिन आश्चर्य क्या? नए संसद भवन के साथ अब सेंट्रल हॉल को भी तो म्यूजियम में ही बदला जा रहा है!

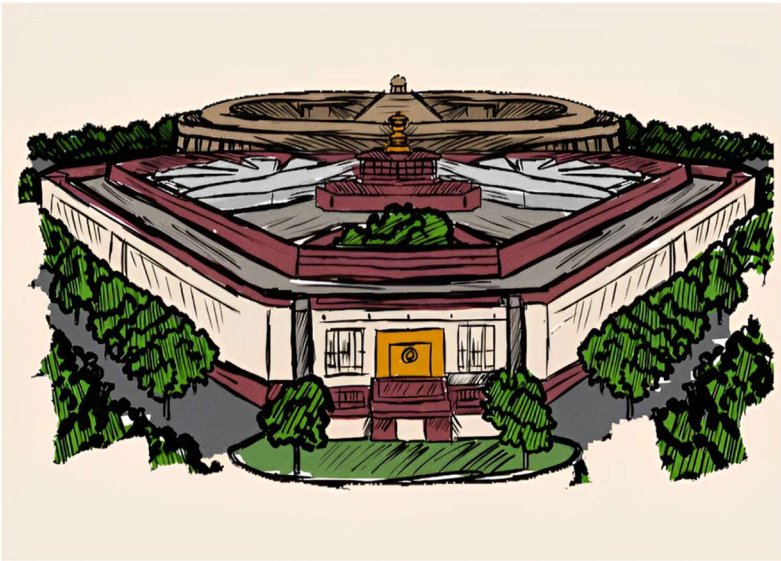


दैनिक जागरण

Date:26-05-23

नए संसद भवन पर सस्ती राजनीति

जगमोहन सिंह राजपूत, (लेखक शिक्षा, सामाजिक सद्भाव और पंथक समरसता के क्षेत्र में कार्यरत हैं)



पिछले छह दशकों में मैंने भारत की राजनीति में विपक्ष और उसके विद्वत-वर्ग सहयोगियों को इतना व्यथित, व्यग्र और उग्र कभी नहीं देखा, जितना आज देख रहा हूं। नरेन्द्र मोदी उन्हें चैन से बैठने नहीं दे रहे हैं। जो लोग बेरोजगारी, महंगाई, किसान, भाईचारे, महिला अत्याचार और चीन इत्यादि पर चर्चा न होने से चिंतित थे, उन्हें मोदी ने एक नई समस्या में उलझा दिया है। वह स्वयं तो जापान, आस्ट्रेलिया और पापुआ न्यू गिनी जैसे स्थानों पर सारे विश्व का आकर्षण-केंद्र बने, लेकिन भारत में उनके विरोधियों की नींद उड़ गई। मोदी नए संसद भवन का उद्घाटन करने जा रहे हैं, इस बात से

उनके विरोधी इतने व्यथित हैं कि वे इस उद्घाटन समारोह का बहिष्कार करने पर तुल गए हैं। करीब 20 विपक्षी दलों के नेता सब कुछ भूलकर इस समारोह में किसी न किसी तरह मोदी के नाम के शिलापट्ट को नहीं देखना चाहते, जबकि पहले के प्रधानमंत्रियों ने संसद सौध का उद्घाटन किया या संसद की लाइब्रेरी की आधारशिला रखी। उसे वे याद भी नहीं करना चाहते। एक चर्चा में एक 'सेक्युलर' नेता जी कह गए-वे कुलीन लोग थे, उनकी बात अलग थी। विशेषाधिकारों में अनेक दशकों तक सराबोर रह चुका वर्ग मोदी को आज भी प्रधानमंत्री स्वीकार नहीं कर पाया है। बार-बार की असफलता से जनित उनकी व्यग्रता अब उग्रता में बदल गई है। यह आक्रोश उनकी सोचने की क्षमता को क्षीण करने के साथ उनकी भाषागत शालीनता को हर चुका है।

विपक्ष की ओर से नए संसद भवन के उद्घाटन का जैसा निकृष्ट तरीके से विरोध किया जा रहा है, उससे यदि कुछ साफ होता है तो यही कि भारत की राजनीति को अत्यंत निचले स्तर पर लाया जा चुका है। संवाद की संभावनाएं समाप्त की जा चुकी हैं। यदि ऐसा न होता तो प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नाम से लगने वाला शिलापट्ट उनके हृदय को विदीर्ण नहीं कर रहा होता। यदि विपक्ष कुछ पुरानी याद्दाश्त टटोले तो शायद उनकी पीड़ा कुछ कम हो जाएगी। क्या यह उचित और सांत्वनादायक नहीं होगा कि ये लोग याद करें कि अंडमान-निकोबार की सेलुलर जेल का नाम राजीव गांधी के नाम पर रखने के पीछे कौन सी मानसिकता काम कर रही थी? वहां तो विनायक दामोदर सावरकर और कितने ही अन्य स्वतंत्र सेनानियों ने अमानवीय यातना झेली थी, जो आज भी लोगों के मन-मानस को उद्वेलित करती है। दिल्ली के कनाट प्लेस को राजीव चौक नाम क्यों दिया गया? यह सब काम किस कदर आंख मूंद कर किया जाता था, इसका एक उदाहरण मुझे बार-बार याद आता है। नवोदय विद्यालयों की संकल्पना का श्रेय राजीव गांधी को जाना चाहिए, लेकिन उन्हें जवाहर नवोदय विद्यालय कहा जा जाता है। पंडित नेहरू ने बड़े-बड़े योगदान दिए, लेकिन नवोदय विद्यालयों से उनका कोई जुड़ाव नहीं रहा। देश में जवाहर नवोदय विद्यालय जैसे उदाहरणों की कमी नहीं।

नरेन्द्र मोदी की ओर से नए संसद भवन के उद्घाटन को लेकर जो व्याकुलता विपक्ष में देखी जा रही है, वह हताशा की ही अभिव्यक्ति है। यहां यह याद करना भी उचित होगा कि सत्ताच्युत नेता नए संसद भवन के निर्माण के समय से ही चिंतित हो उठे थे। उनकी ओर से निर्माण रोकने के हरसंभव प्रयास किए गए, जो असफल रहे। वास्तव में नए संसद भवन के शिलापट्ट पर नरेन्द्र मोदी के नाम को लेकर चिंता तो तभी पैदा हो गई थी। अब वह अभिव्यक्ति पा रही है, लेकिन बहुत ही छिछले तरीके से। विपक्ष का एक उद्घाटन समारोह को लेकर उभरा विघ्नसंतोषी स्वरूप भारत की

राजनीति में अपरिपक्वता की पराकाष्ठा ही कही जा सकती है। विपक्ष की चिंता के विस्तार को देखकर लगता है कि उनके अनुसार देश के समक्ष कोई बड़ा संकट पैदा हो गया है। विरोध का स्रोत कांग्रेस पार्टी है, जिसे अनेक दशकों से केवल अपने परिवार के लोगों के नाम ही प्रत्येक स्थान पर देखने की आदत बन गई थी। यह उसी सोच का परिणाम है कि भारत में इस समय राजनीति में सारे विपक्ष का ध्यान सत्तापक्ष को हटाने में नहीं है। वह केवल एक व्यक्ति-नरेन्द्र मोदी को हटाने पर केंद्रित है। इसके लिए विपक्षी नेता किसी भी सीमा तक जा सकते हैं। उनके प्रयास 21 वर्षों से चल रहे हैं, जब मोदी गुजरात के मुख्यमंत्री बने थे। इनमें दस वर्षों के दौरान केंद्र सरकार ने नैतिक-अनैतिक के अंतर को भूलकर हर वह प्रयास किया, जिससे मोदी को अपराधी घोषित किया जा सके और वर्ग-विशेष के एकमुश्त वोट बटोरे जा सकें। वे जितना तपाते रहे, मोदी उतना ही निखरते रहे। स्वार्थवश कुछ नेता लोग भले ही न मानें, व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत और हर भारतीय का सम्मान वैश्विक स्तर पर पिछले आठ-नौ वर्षों में तेजी से बढ़ा है। प्रधानमंत्री ने प्रारंभ में जो विदेश यात्राएं कीं, उनकी आलोचनाओं को याद करिए। इन यात्राओं ने भारत को अप्रत्याशित लाभ दिए। याद करें कि जीरो-बैलेंस खाता खोलने की कैसे हंसी उड़ाई गई। इन खातों में जब किसान सम्मान राशि सीधे जमा होती है, तब कट या कमीशन वालों का दुखी होना स्वाभाविक है।

यदि विपक्ष ने गांधीजी का मनोयोग से अध्ययन किया होता, तो उन्हें मोदी के विरोध का रास्ता नजर आ जाता। वे जन सेवा को अपना सकते थे। गांव-गांव जाकर जन सेवा कर सकते थे। हाशिये पर मौजूद लोगों के साथ रहकर उनके जीवन से तादात्म्य स्थापित कर सकते थे। जनता के हृदय में स्थान वही बना सकता है, जो उसकी पीड़ा को समझता हो। विपक्षी नेता यही दिखा रहे हैं कि उन्हें जनता की पीड़ा से कोई मतलब नहीं और इसीलिए वे सस्ती राजनीति कर रहे हैं।

राष्ट्रीय
सहारा

Date:26-05-23

नये संसद भवन पर दुखद विवाद

संपादकीय

संसद भवन के उद्घाटन समारोह में कांग्रेस, टीएमसी, जेडीयू, आरजेडी, एनसीपी, सपा सहित बीस राजनीतिक पार्टियों ने शामिल न होने की घोषणा कर दी है। इनका कहना है कि जब संसद से ही लोकतंत्र को बहिष्कृत कर दिया गया हो, लोकतंत्र की मूल भावना का हनन कर दिया गया हो, तब संसद के नये भवन का कोई महकव नहीं है। विपक्षी दलों का समारोह बहिष्कार करने का तर्क या आरोप यह है कि इस भवन का उद्घाटन प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा न किए जाकर राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू द्वारा किया जाना चाहिए था। राष्ट्रपति को उद्घाटन के लिए आमंत्रित न करके भाजपा सरकार ने न केवल राष्ट्रपति का भारी अपमान किया है, बल्कि सीधे-सीधे लोकतंत्र पर हमला किया है। उन्होंने समारोह को पूरी तरह प्रधानमंत्री केंद्रित बताया है और नये संसद भवन के निर्माण पर भी सवालिया निशान लगाया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि राष्ट्रपति संवैधानिक सत्ता का प्रमुख होता है और संसदीय परंपरा का अभिन्न अंग भी होता है। संसद के सत्र का प्रारंभ राष्ट्रपति के संबोधन से होता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो संसद भवन के उद्घाटन के लिए राष्ट्र

प्रमुख को ही प्राथमिकता पर रखा जाना चाहिए। सरकार ने प्रधानमंत्री से उद्घाटन कराने का निर्णय क्यों लिया है। इस बारे में कोई ठोस तर्क मौजूद नहीं है, सिवाय इसके कि लोक सभा अध्यक्ष ने नये संसद भवन का उद्घाटन करने के लिए राष्ट्रपति की बजाय प्रधानमंत्री को चुना है। विपक्ष ने इसे अलोकतांत्रिक कृत्य की संज्ञा दी है। विपक्ष चाहता तो इस मुद्दे को ज्यादा तूल न देता और संसद भवन के उद्घाटन जैसे अनुष्ठान में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करके संसदीय परंपरा के प्रति अपनी निष्ठा का प्रदर्शन कर सकता था। प्रधानमंत्री मोदी के प्रति उसके भीतर जो असहमति, आक्रोश या निंदा का भाव है, उसे इस अवसर पर स्थगित कर सकता था। सरकार भी यहां विपक्ष की भावनाओं का ध्यान रखकर राष्ट्रपति को उद्घाटन के लिए आमंत्रित कर सकती थी। अब ये दोनों ही संभावनाएं समाप्त हो गई हैं। स्वस्थ लोकतंत्र के लिए यह शुभ नहीं है। भले ही सर्वोच्च न्यायालय में राष्ट्रपति से उद्घाटन कराने के लिए याचिका दायर की गई हो, लेकिन उसके वांछित परिणाम के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता। सिर्फ अपेक्षा की जा सकती है कि लोकतंत्र के हित में दोनों थोड़ा झुकेंगे और एक दूसरे के लिए गुंजाइश बनाएं।

Date: 26-05-23

संघवाद के नाम पर एकजुटता

अनन्त मित्तल

केंद्रशासित प्रदेश दिल्ली में अफसरों की नियुक्ति का अधिकार केंद्र सरकार द्वारा अध्यादेश के जरिए केजरीवाल सरकार से लेकर एलजी यानी उपराज्यपाल को फिर सौंप देने से छिड़े राजनीतिक विवाद के बीजेपी बनाम विपक्ष की राजनीतिक शकल लेना तय है। आप सुप्रीम कोर्ट सहित सड़क से संसद तक प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी व बीजेपी से विपक्षी सहयोग के बूते जोर आजमाइश करना चाहती है।

एलजी की बजाय दिल्ली की निर्वाचित केजरीवाल सरकार को अफसरों की नियुक्ति का अधिकार बीती 11 मई को सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने सौंपा था। पीठ के सर्वसम्मत फैसले में प्रधान न्यायाधीश न्यायमूर्ति डीवाई चंद्रचूड़ सहित कुल पांच न्यायाधीश शामिल थे। दिल्ली सरकार ने केंद्र सरकार के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट में अवमानना याचिका दायर की है। आप संयोजक अरविंद केजरीवाल द्वारा अध्यादेश को कानूनी जामा पहनाने से राज्य सभा में रोकने की दरखास्त को कांग्रेस के अलावा विपक्षी दलों के मुख्यमंत्रियों और नेताओं का समर्थन मिल रहा है। समर्थन जुटाने की मुहिम में केजरीवाल बिहार और पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्रियों नीतीश कुमार एवं ममता बनर्जी से मिल चुके हैं। केजरीवाल अब पंजाब के मुख्यमंत्री भगवंत मान सहित मुंबई में एनसीपी अध्यक्ष शरद पवार एवं यूबीटी शिवसेना अध्यक्ष उद्धव ठाकरे से मिलने गए हैं। हालांकि देश के सबसे बड़े विपक्षी दल कांग्रेस का समर्थन जुटाने के लिए आप ने अभी तक उसके किसी भी पदाधिकारी से मुलाकात का समय नहीं मांगा है। कांग्रेस द्वारा केजरीवाल की मुहिम को अभी तक समर्थन नहीं देने का स्पष्टीकरण भी दिया जा चुका है। कांग्रेस आलाकमान से उसकी दिल्ली एवं पंजाब इकाई के प्रमुख नेताओं ने आप को किसी भी मुद्दे पर समर्थन नहीं देने की अपील की है। गौरतलब है कि दिल्ली सहित पंजाब एवं गुजरात में भी कांग्रेस को आप ने सत्ता के हाशिये पर बैठा दिया है। राजस्थान, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में भी आप ने आगामी विधानसभा चुनाव जोरशोर से लड़ने का ऐलान किया है। जाहिर है कि गुजरात की तरह आप इन राज्यों में जितने भी

मत हासिल करेगी उससे सत्ता पाने में बीजेपी को फायदा और कांग्रेस का नुकसान तय है। यूं भी राष्ट्रीय दल का दर्जा मिलने के बाद आप के हौसले बुलंद हैं, और कांग्रेस तथा बीजेपी उसे अपना प्रबल राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी मानकर उसकी रोकथाम में सक्रिय हैं। इसके बावजूद केजरीवाल विपक्षी समर्थन बटोरने की मुहिम में जुटे हैं। उनके अनुसार सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ का साफ आदेश था कि उपराज्यपाल को दिल्ली सरकार की सलाह पर काम करना होगा। अध्यादेश लाकर बीजेपी ने दिल्ली वालों से छल किया है।

सुप्रीम कोर्ट के अनुसार अफसरों की नियुक्ति एवं तबादले के आदेश आगे से केंद्रशासित प्रदेश की निर्वाचित सरकार को जारी करने थे उन पर एलजी को अपने अधिकारों के अनुसार कार्रवाई करनी थी। सुप्रीम कोर्ट के आदेश के कुछ देर बाद ही केजरीवाल सरकार ने सेवा सचिव आशीष मोरे को उनके पद से हटाने का आदेश एलजी को भेज दिया था। एलजी ने इस तबादला आदेश पर प्रतिक्रिया नहीं जताई जिसे आप ने रोक लगाने के रूप में प्रचारित किया। हालांकि बाद में मोरे ने केजरीवाल सरकार की बात मान ली मगर सुप्रीम कोर्ट से अधिकार मिलने के बाद मुख्यमंत्री ने प्रेस कॉन्फ्रेंस में कथित नाकाबिल और भ्रष्ट अफसरों को हटाने का ऐलान करके केंद्र से फिर अदावत ले ली। उन्होंने कहा कि और, ईमानदारों को प्रमुख पदों पर नियुक्त किया जाएगा मगर एलजी की शह पर दिल्ली की निर्वाचित सरकार के काम बिगाड़ अफसरों को केंद्र सरकार मझधार में कैसे छोड़ देती? सुप्रीम कोर्ट के ११ मई के फैसले से पहले, सेवा विभाग को दिल्ली के उपराज्यपाल स्वतंत्र रूप में चला रहे थे जिसके खिलाफ ही आप की सरकार सर्वोच्च अदालत से न्याय मांगने गई थी। सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने साफ कहा कि अफसरों पर निर्वाचित सरकार का नियंत्रण न हो तो उनकी जवाबदेही कैसे तय होगी। अदालत ने कानून-व्यवस्था, पुलिस और जमीन के अलावा उपराज्यपाल से सभी मामलों में निर्वाचित सरकार की सलाह के अनुसार चलने को कहा था। आदेश के अनुसार अधिकारी यदि मंत्रियों को रिपोर्ट करना बंद कर दें या हुकमउदूली करें तो फिर उनकी जवाबदेही के नियम बेमानी हो जाएंगे। इसलिए अधिकारियों की नियुक्ति एवं तबादले का अधिकार निर्वाचित सरकार को देने का आदेश सुप्रीम कोर्ट ने दे दिया।

केजरीवाल सरकार और एलजी के बीच अधिकारों पर तनातनी पिछले नौ साल से केंद्र में मोदी सरकार बनने के बाद से ही जारी है। अध्यादेश लाने के साथ ही केंद्र सरकार ने भी सुप्रीम कोर्ट में फैसले की समीक्षा के लिए पुनर्विचार याचिका लगा दी है। फैसला तब भी कायम रहा तो केंद्र सरकार क्यूरेटिव पिटीशन दाखिल करके नये सिरे से दलील पेश कर सकती है। केंद्र के अध्यादेश में दिल्ली सरकार में अफसरों की नियुक्ति के मामले में एलजी के निर्णय को ही अंतिम बताया गया है। दिल्ली में सिविल सर्विसेज बोर्ड बना कर उसमें मुख्यमंत्री और दो वरिष्ठ नौकरशाहों के नामांकन का प्रावधान किया है। बोर्ड में बहुमत से हुआ फैसला ही मान्य होगा मगर विवाद होने पर एलजी निर्णायक होंगे।

अध्यादेश को केजरीवाल सरकार ने सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी है। उनकी शिकायत है कि नियुक्ति एवं तबादले का अधिकार एलजी के पास होने से अफसर उनके मंत्रियों की एक नहीं सुनते। अपने चुनावी वायदे पूरे करने तथा प्रशासन को अपने एजेंडे पर चलाने के लिए निर्वाचित सरकार को कम से कम ऐसे अफसर तो चाहिए जो उसकी प्राथमिकताओं को समझें! जनहित के फैसलों में भी नौकरशाही अड़चन डालती है। देखना है कि गर्मी की छुट्टियों के बाद सुप्रीम कोर्ट केंद्र और दिल्ली सरकार की याचिकाओं पर क्या रुख अपनाएगा। वैसे सर्वोच्च अदालत ने कुछ मामलों में अपने फैसले को उलटने वाले विधायी उपायों को पहले भी खारिज किया है। कुल मिलाकर बीजेपी की मोदी सरकार ने अध्यादेश लाकर संघवाद की रक्षा के मुद्दे पर विपक्ष को एकजुट होने का नया बहाना दे दिया है।

उद्घाटन और शिकायत

संपादकीय

भारत वस्तुतः विविध मत-अभिमत से समृद्ध देश है। इस विशाल देश में कदम-कदम पर विरोध और विरोधाभासों का सामने आना सहज व स्वाभाविक है। भारत के नए संसद भवन परिसर का उद्घाटन एक खुशी का अवसर है, लेकिन इस खुशी के अवसर पर एक शिकायत राजनीतिक गलियारों से होती हुई सर्वोच्च न्यायालय में पहुंच गई है। एक अधिवक्ता ने राष्ट्रपति को उद्घाटन के अवसर पर आमंत्रित न किए जाने की शिकायत सर्वोच्च न्यायालय में कर दी है, इस याचिका को सुप्रीम कोर्ट भले पहली सुनवाई में ही टाल दे या खारिज कर दे, लेकिन यह अपने आप में मानीखेज है कि ऐसी शिकायत भी कोई कर सकता है। क्या ऐसा कोई कानून है, जो किसी सार्वजनिक कार्यक्रम में सांविधानिक पदों पर बैठी विभूतियों को आमंत्रित करने संबंधी कोई दिशा-निर्देश देता है? क्या केंद्र सरकार ने राष्ट्रपति को उद्घाटन कार्यक्रम में न बुलाकर कोई त्रुटि की है? अगर यह प्रक्रियागत त्रुटि है, तो क्या कानून के तहत भी कमी मानी जा सकती है? इसका फैसला सर्वोच्च न्यायालय को जल्दी करना होगा। यदि इस शिकायत को अदालत में ज्यादा समय तक सुना गया, तो इसका कोई विशेष लाभ नहीं होगा और इससे सिर्फ सियासत को बल मिलेगा।

28 मई को नए संसद भवन के उद्घाटन के लिए राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू को आमंत्रित न करना विधायिका या कार्यपालिका द्वारा किया गया फैसला है और इसकी विवेचना अवश्य होनी चाहिए। यह राजनीति का विषय ही नहीं है, व्यावहारिकता से जुड़ा विषय है। ऐसे विषयों पर किसी भी व्यवस्था में बहस लगातार होती रहती है और समय के साथ उसमें सुधार भी होते रहते हैं। सर्वोच्च न्यायालय में दायर याचिका में यह शिकायत भी शामिल है कि राष्ट्रपति को ऐसे कार्यक्रम से बाहर रखना अपमान के बराबर है और गुहार लगाई गई है कि राष्ट्रपति को आमंत्रित करने के निर्देश केंद्र सरकार को दिए जाएं। न्यायपालिका अगर ऐसे फैसले करने लगेगी, तो जाहिर है, कार्यपालिका को बहुत समस्या होगी। क्या ऐसे में बेहतर यह नहीं है कि विधायिका ऐसे आयोजनों के बारे में एक प्रोटोकॉल बनाए कि कहां किसको बुलाना है और किसको नहीं बुलाना है? सार्वजनिक आयोजनों से जुड़े फैसलों को चार-पांच लोगों के विवेक पर छोड़ना क्या सही है? कम से कम राष्ट्रपति और राज्यपाल के मामले में आमंत्रण या कार्यक्रम संबंधी दिशा-निर्देश स्पष्ट होने चाहिए। अगर ये अभी तक नहीं बनाए गए हैं, तो बना लेने चाहिए, क्योंकि राजनीति की जो दशा-दिशा है, उसमें आने वाले समय में इस तरह के विवाद बढ़ते चले जाएंगे। ऐसे दिशा-निर्देश मजबूरी में अगर न्यायपालिका बनाने लगे, तो फिर विधायिका के स्वाभिमान को ही चोट लगेगी।

गौर करने की बात है कि दायर याचिका में संविधान के अनुच्छेद 79 का हवाला दिया गया है, जो बताता है कि एक संसद होगी, जिसमें राष्ट्रपति और दो सदनों का समावेश होगा। क्या राष्ट्रपति को उद्घाटन कार्यक्रम में न बुलाना अनुच्छेद 79 का उल्लंघन है? इस विवाद की पृष्ठभूमि यह भी है कि 11 राज्य सरकारों को नियंत्रित करने वाली 19 पार्टियों के एक संयुक्त बयान में नई संसद के उद्घाटन संबंधी फैसले को लोकतंत्र पर हमला बता दिया गया। क्या इसके

पहले कभी राष्ट्रपति के पद को नजरअंदाज नहीं किया गया है? यहां अफसोसनाक उदाहरण गिनाने की जरूरत नहीं है, पर समय आ गया है, जब ऐसे गंभीर सवालों को राजनीति से ऊपर उठकर हल किया जाए।

Date:26-05-23

जातीय हिंसा की आग जल्दी बुझाई जाए

संजीव बरुआ, (प्रोफेसर, बार्ड कॉलेज, न्यूयॉर्क)

इस महीने की 11 तारीख को, जब मणिपुर जातीय संघर्ष और हिंसा से जूझ रहा था, तब पड़ोसी राज्य मिजोरम से राज्यसभा सदस्य ने एक मार्मिक ट्वीट किया। यह सांसद हैं, मिजो नेशनल फ्रंट के के वनलालवेना, जिन्होंने लिखा था, 'मणिपुर में मिजो जातीय समुदाय की तमाम जनजातियां सोच सकती हैं कि उनके पास अपना कोई सांसद नहीं है। मैं उन्हें बताना चाहता हूं कि मैं उनका सांसद हूं।'

उनका यह ट्वीट कुकी और मिजो के मजबूत जातीय-सांस्कृतिक जुड़ाव की ओर इशारा कर रहा था। ये दोनों यहां के उस बड़े जनसमूह का हिस्सा हैं, जिनको अमूमन कुकी-मिजो-चिन कहकर संबोधित किया जाता है। हालांकि, इनके सामूहिक नाम 'जू' को कुछ हद तक सामाजिक स्वीकृति मिल चुकी है। वे पूर्वोत्तर भारत की पहाड़ियों, म्यांमार की चिन पहाड़ियों और बांग्लादेश के चटगांव पहाड़ी इलाके में रहते हैं। देश की भौगोलिक सीमा को पार कर चुके इस एकीकरण की कल्पना- और इसे बढ़ावा देने वाला बंधन- सैमुअल हंटिंगटन की प्रसिद्ध किताब द क्लैश ऑफ सिविलाइजेशन में बताई गई सभ्यता का एकीकरण से, जो युद्ध के समय में सजातीय देश के पीछे एकजुट होने को प्रेरित कर सकता है, विपरीत नहीं है। इस सांस्कृतिक निकटता को जानने के बाद ही हम उस आग को समझ सकते हैं, जिससे इन दिनों मणिपुर झुलस रहा है। इस सप्ताह की शुरुआत में भी हमने इंपाल में हिंसा का नया दौर देखा। बुधवार शाम तो एक राज्य मंत्री के घर पर भी हमला हुआ।

भारतीय संसद में पूर्वोत्तर के राज्यों से करीब 40 प्रतिनिधि हैं। अभी किसी भी सदन में मणिपुर से कुकी सांसद नहीं है। वनलालवेना के शब्दों का यह अर्थ लगाया जा सकता है कि मणिपुर के कुकी लोगों के पास बेशक कोई निर्वाचित सांसद नहीं है, पर राज्यसभा सदस्य के रूप में उनका एक प्रतिनिधि जरूर मौजूद है। इस भाव से कुकी, जिनके स्वजातीय लोग मणिपुर में हैं, उत्साहित लग रहे थे। इस ट्वीट को जबर्दस्त प्रतिक्रिया भी मिली, हालांकि कुछ लोगों ने तथाकथित ग्रेटर मिजोरम की मांग भी कर डाली।

मौजूदा संकट को समझने के लिए हमें लोगों की इस भावना पर भी गौर करना होगा। 1960 और 1970 के दशक में हुए मिजो विद्रोह में मणिपुर के कुकियों ने काफी सक्रिय हिस्सेदारी निभाई थी। मणिपुर नेशनल फ्रंट (एमएनएफ) की प्रमुख मांगों में एक मांग थी मिजो आबादी वाले क्षेत्रों का एकीकरण। इसी मांग ने अंतिम समय में एमएनएफ और केंद्र सरकार की वार्ता बेपटरी कर दी थी। अंततः जिस समझौते पर हस्ताक्षर हुए, उसे आधिकारिक तौर पर मिजोरम समझौता कहा गया, न कि मिजो समझौता। इससे कुकी निराश हुए।

हाल के वर्षों में मिजोरम और मणिपुर पड़ोसी देश म्यांमार और बांग्लादेश की घटनाओं से काफी ज्यादा प्रभावित हुए हैं। भारत आने वाले शरणार्थी उन समुदायों से हैं, जो कुकी व मिजो से जुड़े हैं। हालांकि, शरणार्थियों को लेकर दोनों सूरों की सोच अलग-अलग रही। मिजोरम ने उनका गर्मजोशी से स्वागत किया। 2021 में मुख्यमंत्री जोरामथांगा ने खुलेआम केंद्र सरकार के उस बयान पर आपत्ति जताई थी, जिसमें सीमा पार करने के दौरान पकड़े गए लोगों को 'अवैध अप्रवासी' कहा गया था। विरोध गृह मंत्रालय के उस निर्देश का भी था, जिसमें म्यांमार के इन नागरिकों को शीघ्र उनके वतन भेजने की बात थी। उन्होंने कहा था, बेशक 'विदेश नीति के कुछ मसले ऐसे हो सकते हैं, जिनमें भारत को सावधानी से आगे बढ़ने की जरूरत है, लेकिन हम इस मानवीय संकट से आंखें नहीं मूंद सकते, जो ठीक हमारे पड़ोस में पैदा हुआ है।' यंग मिजो एसोसिएशन (वाईएमए) जैसे नागरिक समाज संगठन और चर्च समूह चिन शरणार्थियों को भोजन और आवास उपलब्ध कराने में जुट गए। उनके लिए धन जुटाने की खातिर स्थानीय स्तर पर 'राइटियन रिलीफ' (मिजो शब्द 'राइटियन' का अर्थ भाई होता है) नामक अभियान भी शुरू किया गया।

पिछले साल के अंत में मिजोरम ने कुछ सौ बांग्लादेशियों के लिए भी यही रणनीति अपनाई, जो चटगांव के पहाड़ी इलाकों से यहां दाखिल हुए थे। वे बांग्लादेशी सुरक्षा बलों व कुकी-चिन नेशनल आर्मी (केएनए) के बीच जारी जंग से भाग रहे थे। केएनए को बावम, पुंगखुआ, लुशाई, खुमी, मो और ख्यांग जैसे समूहों का प्रतिनिधि माना जाता है। ये सभी जातियां कुकी और मिजो से जुड़ी हुई हैं। मिजोरम कैबिनेट की एक बैठक में इनके लिए अस्थायी आश्रय, भोजन व अन्य राहत उपलब्ध कराने का फैसला भी किया गया।

यह मिजो सशस्त्र संघर्ष के इतिहास के एक पहलू की याद दिलाता है, जिसको शायद ही स्वीकार किया गया। दरअसल, मिजो गुरिल्ला लड़ाकों ने न सिर्फ तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान के चटगांव पहाड़ी इलाकों में शरण ली थी, बल्कि सीमा पार स्वजातीय रिश्तेदारों के बीच भी उन्होंने पनाह ले रखी थी। वास्तव में, एमएनएफ का मुख्यालय एक लुशाई (या मिजो) गांव महमूम में था, जो मौजूदा बांग्लादेश का इलाका है। हालांकि, मणिपुर में कुछ चिन शरणार्थियों को पुलिस ने गिरफ्तार किया। मुख्यमंत्री एन बीरेन सिंह का कहना था कि उन्हें इसलिए गिरफ्तार किया गया, क्योंकि वे अपनी नागरिकता का कोई दस्तावेज पेश नहीं कर सके। मुख्यमंत्री के अनुसार, 'अवैध प्रवासियों को आश्रय देना' राज्य के लिए 'सबसे बड़ा खतरा' है।

हालात को जिस चीज ने और जटिल बनाया, वह था कुकियों को अतीत में विदेशी कहकर चिढ़ाना। यहां तक कि अफीम की खेती और नशे के खिलाफ राज्य सरकार के अभियानों में भी 'विदेशी' और 'बाहरी' जैसे शब्दों का इस्तेमाल किया गया। कुकी को ऐसे अभियानों का खामियाजा भुगतना पड़ा, क्योंकि मणिपुर में अफीम अमूमन कुकियों द्वारा बसाए गए गांवों में ही उगाई जाती है। मुख्यमंत्री द्वारा अफीम की अवैध खेती विदेशियों द्वारा किए जाने वाले बयान ने भी तनाव बढ़ा दिया।

जाहिर है, यह तथ्य कि शरणार्थी कुकी व मिजो के सीमा पार स्वजातीय हैं और मिजोरम में उनका गर्मजोशी से स्वागत किया गया था, लेकिन मणिपुर में उनके साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार किया गया, अध्ययन का एक उल्लेखनीय विषय है। 'जू' समुदाय की नजर से देखें, तो दोनों राज्यों में उनकी ताकत में भारी अंतर है। मिजोरम में वे सत्ता के शीर्ष पर हैं, जबकि मणिपुर में मैतेई बहुल राजनीतिक व्यवस्था में उनका असर कमजोर है। इसी कारण वनलालवेना के ट्वीट और उस पर आई प्रतिक्रिया के गहरे निहितार्थ निकलते हैं।